बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 3, July-September, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971

# भारतीय जीवन–दर्शन में पुरुषार्थ की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. महेन्द्र कुमार
सहायक आचार्य (अतिथि संकाय) समाजशास्त्र
राजकीय महाविद्यालय, सिणधरी, जिला– बालोतरा राज

**शोध सारांश**

भारतीय जीवन दर्शन में पुरुषार्थ की अवधारणा एक संपूर्ण जीवन जीने की प्रणाली है, जो केवल धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं, बल्कि व्यवहारिक और यथार्थवादी भी है। आधुनिक युग की चुनौतियों जैसे – नैतिक पतन, मानसिक तनाव, सामाजिक असमानता, का समाधान पुरुषार्थ के सिद्धांतों में अंतर्निहित है। अतः पुरुषार्थ की पुनर्परिभाषा और पुनराविष्कार की आज आवश्यकता है।

भारतीय जीवन–दर्शन एक समग्र, संतुलित और मूल्यनिष्ठ जीवन जीने की पद्धति है। इसका आधार चार पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पर आधारित है। ये न केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शक हैं, बल्कि सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन की दशा और दिशा तय करने वाले सिद्धांत भी हैं।

इस शोध पत्र में यह विश्लेषण किया गया है कि पुरुषार्थ की यह अवधारणा भारतीय समाज के निर्माण, सामाजिक संरचना, मूल्यों और आचरण पर कैसे प्रभाव डालती है?विशेष रूप से आधुनिक युग में, जब सामाजिक परिवर्तन तीव्र गति से हो रहे हैं, यह समझना महत्वपूर्ण हो जाता है कि यह पारंपरिक जीवन–दर्शन आज भी समाज में किस प्रकार जीवंत हैं।

**मुख्य शब्द** : भारतीय, जीवन– दर्शन, पुरुषार्थ, प्रासंगिकता

**पुरुषार्थ की संकल्पना**

पुरुषार्थ का शाब्दिक अर्थ हैं– 'पुरुषरथर्यते पुरुषार्थ' अर्थात पुरुष के लिए जो अर्थपूर्ण हैं, जो अभीष्ट हैं, उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास करना पुरुषार्थ हैं। इस प्रकार पुरुषार्थी का कार्य हैं इस अभीष्ट की प्राप्ति हेतु उद्यम करना।

पुरुषार्थ का तात्पर्य उद्योग करने या प्रयत्न करने से हैं ।इसमें मनुष्य किसी अपने अभीष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कुछ उद्यम या उद्योग करता हैं। यहां अभीष्ट का अर्थ मोक्ष प्राप्ति से है। इसकी प्राप्ति धर्म ,अर्थ और काम नामक पुरुषार्थ के माध्यम से ही होती हैं। उपनिषदों गीता तथा मनुस्मृति में चार आधारभूत कर्तव्यों के रूप में पुरुषार्थ का उल्लेख मिलता हैं। उन्हें धर्म ,अर्थ ,काम और मोक्ष नाम दिया गया हैं।

**आध्यात्मिक परिभाषा –**

पुरुषार्थ वह प्रयास है, जिसके द्वारा आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को जानने का प्रयास करती है और मोक्ष की ओर अग्रसर होती है।

"स्वधर्म पालन और आत्मोन्नति की दिशा में किया गया प्रयत्न ही पुरुषार्थ है।"

**मनुस्मृति और अन्य ग्रंथों के अनुसार–**

मनुस्मृति, महाभारत, योगवासिष्ठ, और अन्य धर्मशास्त्रों में पुरुषार्थ को मनुष्य के जीवन की दिशा निर्धारित करने वाला बताया गया है।

"धर्मार्थकाममोक्षाणां पुरुषार्थः समुच्यते।"

अर्थ: धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों का समुच्चय पुरुषार्थ कहलाता है।

**पुरुषार्थ के प्रकार–** पुरुषार्थ के निम्नलिखित चार प्रकार बताये गये हैं।

**1.धर्म–** धर्म व साधन है जो मनुष्य द्वारा अर्थ और काम के उपभोग मर्यादित करके मोक्ष की ओर ले जाता हैं।इसलिए धर्म की वैश्विक सूत्र में व्याख्या की गई है, जिसके द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो वह धर्म हैं।

धर्म मानवीय आदर्श एवं मूल्यों को नियमबद्ध कर उन्हें एकता व नियमितता प्रदान करता हैं। भारतीय संस्कृति को धर्म –प्राण कहा जाता हैं। धर्म भारतीय संस्कृति के मूल में विद्यमान हैं।

**डॉ .गोपाल के अनुसार,** धर्म का अर्थ कर्तव्य से है। धर्मशास्त्र के अनुसार साधारण कर्तव्य करने वाले को धर्म कहते हैं।

**डॉ.पी.वी.काणे अनुसार,** "धर्म का संबंध किसी विशेष प्रकार के ईश्वरीय मत से नहीं है। यह तो आचरण की संहिता है जो व्यक्तियों की क्रियाकलापों को नियंत्रित करती है ।इसका लक्ष्य व्यक्ति को इस योग्य बनाना है कि वह मानव जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर ले। वास्तव में जिसके द्वारा उन्नति एवं परलोक में कल्याण हो, वही धर्म है।"

धर्म 'शब्द' धृ श्धातु से बनता है जिसका अर्थ होता है –धारण करना।

**धर्म के लक्षण** – मनु स्मृति में धर्म के 10 लक्षण बताए हैं–

धैर्य ,क्षमा, संयम, चोरी न करना, आंतरिक और बाहरी शुद्धि, इंद्रियों को वश में रखना, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना।

**धर्म के स्रोत**

◆ वेद

◆स्मृति

◆ धर्मात्माओं का आचरण

◆ व्यक्ति का अंतरूकरण

**धर्म के स्वरूप**

- **सामान्य धर्म–** सामान्य धर्म को मानव –धर्म भी कहा जाता हैं।वे सभी नैतिक नियम इसके अंतर्गत आते हैं, जिसके अनुसार आचरण या व्यवहार करना ही प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्तव्य माना गया हैं।
- **विशिष्ट धर्म–** व्यक्ति को जिन कर्तव्यों का पालन समय, परिस्थिति और किसी स्थान विशेष को ध्यान में रखते हुए निष्ठापूर्वक करना आवश्यक होता है ,वह विशिष्ट धर्म के रूप में जाना जाता हैं।
- **आपद्धर्म –** विपत्ति के समय या आपत्ति कल में जब व्यक्ति अपने सामान्य और विशिष्ट धर्म से अलग हटकर परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार करते हुए अपने धर्म का पालन करता है, तब यह आपद्धर्म कहलाता हैं।

**2.अर्थ–** पुरुषार्थों में अर्थ का दूसरा स्थान हैं।अर्थ का संबंध धन संपत्ति से होते हुए भौतिक संसाधनों और सुख से भी हैं। अर्थ को धर्म का साधन माना जाता हैं।

वैदिक साहित्य के आधार पर श्री गोखले में अर्थ का मतलब समझते हुए यह कहा हैं कि " अर्थ के अंतर्गत वे सभी भौतिक वस्तुएं आ जाती है जो परिवार बसाने, गृहस्थी चलाने और विभिन्न धार्मिक दायित्वों को निभाने के लिए आवश्यक हैं।"

महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर ने धन की महत्ता बताते हुए श्री कृष्ण से कहा हैं कि धन ही सभी धर्मों का मूल हैं क्योंकि इसी से सारी धार्मिक कार्यों में धन की अपेक्षा की जाती है। अर्थ विहीन व्यक्ति ग्रीष्म की सुखी सरिता के समान माना गया हैं।अर्थ के बिना जीवन यापन मुश्किल हो जाता है।

इस प्रकार धन का महत्व भौतिक जगत में सर्वाधिक माना हैं। जीवन में सभी भौतिक सुखों की पूर्ति अर्थ के उपार्जन और संग्रह से ही संभव हैं।महाभारत, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पंचतंत्र, स्मृतियों के सभी ग्रन्थों में अर्थ के महत्व को स्वीकार किया गया हैं। स्मृतियों में कहा गया है कि जो व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में अर्थ के पुरुषार्थ को प्राप्त किए बिना संन्यास आश्रम को प्राप्त करता हैं,उसे जीवन में मोक्ष प्राप्ति नहीं होती है ।मोक्ष प्राप्ति के लिए व्यक्ति को उचित तरीके से अर्थ की प्राप्ति करना आवश्यक हैं।

**3.काम –** पुरुषार्थ के अंतर्गत काम मानव जीवन का तीसरा प्रमुख उद्देश्य हैं। काम का तात्पर्य सभी प्रकार की इच्छाओं एवं कामनाओं से हैं। कम शब्दों का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता हैं।

**संकुचित अर्थ –** काम का तात्पर्य यौनिक प्रवृत्ति के संतुष्टि से हैं।

**व्यापक अर्थ–** काम के अंतर्गत मानव की सभी प्रवृत्तियां इच्छाएं एवं कामनाएं आ जाती है।

**डॉ.कपाड़िया के अनुसार,** " काम मानव जीवन के सहज स्वभाव एवं भावुक जीवन को व्यक्त करता है तथा उसकी काम भावना और सौंदर्य प्रियता की वृद्धि की संतुष्टि की ओर संकेत करता हैं।"

**काम को पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार करने के आधार**

1. जैविकीय आधार
2. सामाजिक आधार
3. धार्मिक आधार

**काम के वास्तविक रूप**

1.दाम्पत्य बंधन के रूप में काम की अभिव्यक्ति गृहस्थ आश्रम के धर्म के पालन द्वारा होती हैं।

2. आध्यात्मिक रूप से काम को प्रेम के रूप में व्यक्त किया जा सकता हैं, जिसका वर्णन कबीर के ढाई अक्षर के प्रेम में मिलता हैं। इसका तात्पर्य सभी के साथ मनोभाव रखने से हैं।

3. काम का एक रूप कलात्मक भी हैं। यह उसका सौंदर्यात्मक पक्ष हैं। साहित्य, संगीत ,नृत्य वस्तु और चित्रकला के रूप में इसके अभिव्यक्ति होती हैं।

4.**मोक्ष –** जीव का अंतिम लक्ष्य मोक्ष हैं। बौद्ध साहित्य में इसे "निर्वाण" और जैन साहित्य में " कैवल्य " के नाम से जाना हैं। बौद्ध दर्शन में मोक्ष को जीवन मुक्ति और विदेहमुक्ति के रूप में कहां गया हैं।

**डॉ.कपाड़िया के अनुसार,** " मानव की शाश्वत प्रकृति आध्यात्मिक है और जीवन का उद्देश्य इसको प्रकाशित करना तथा इसके द्वारा आनंद और ज्ञान प्राप्त करना हैं।"

◆जीवन मुक्ति का तात्पर्य है– संसार में रहते हुए भी संसार के कष्टों से छुटकारा पा लेना और तत्वज्ञान से हैं।

◆ देहमुक्ति का अर्थ हैं–जीवन –मरण के चक्र से छुटकारा पा लेना।

जब व्यक्ति की आत्मा परमात्मा के साथ एक रूप हो जाये तब उसे बार–बार इस संसार में नहीं आना पड़ता है, यही स्थिति मोक्ष कहलाती हैं। मोक्ष सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि यह जैविक ,लौकिक तथा पारलौकिक आधारों से परे हैं ।यह आत्मा की अमरता है। इसको प्राप्त कर व्यक्ति जन्म– मरण के बंधन से मुक्ति पाता हैं। इस प्रकार आत्मा का परमात्मा में विलीन होना, जन्म –मरण की प्रक्रिया से मुक्ति पाना, हृदय की अज्ञानता का समाप्त होना, तत्वज्ञान की प्राप्ति होना आदि लक्षण मोक्ष के हैं।

**मोक्ष प्राप्ति के साधन**

**1. कर्म मार्ग –** जो व्यक्ति अपने स्वधर्म का ठीक प्रकार से पालन और धर्म के अनुसार आचरण करता है ,वही मोक्ष प्राप्त करता हैं।

**2. ज्ञान मार्ग –** व्यक्ति जब परब्रह्म के स्वरूप का अपने मन में निर्धारण करके सभी प्राणियों में समानता का भाव रखता हुआ अपने मन को स्थिर कर लेता है या आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता हैं, मोक्ष के इसी मार्ग को ज्ञान मार्ग कहा गया हैं।

**3. भक्ति मार्ग –** इसके अंतर्गत व्यक्ति ईश्वर की सगुण उपासना करता है और ईश्वर के प्रति अपने को समर्पित कर देता हैं।इस प्रकार वह प्रेम और भक्ति के द्वारा ईश्वर को पाने का प्रयत्न करता हैं।

**समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में पुरुषार्थ**

**(i) धर्म –** सामाजिक व्यवस्था का आधार

◆धर्म को सामाजिक मर्यादा, कर्तव्य, और नैतिकता से जोड़ा जाता है।

◆यह सामाजिक नियंत्रण का माध्यम है, जो व्यक्ति के आचरण को दिशा देता है।

◆द्रष्टव्य– परिवार, जाति, वर्ग, आश्रम व्यवस्था कृ सबमें धर्म का दायरा निर्धारित किया गया था।

**(ii) अर्थ –** सामाजिक स्तरीकरण का कारक

◆अर्थ यानी आर्थिक संसाधनों की प्राप्ति, समाज में व्यक्ति की स्थिति और प्रतिष्ठा को तय करता है।

◆इससे वर्ग व्यवस्था (social stratification) और सामाजिक गतिशीलता (mobility) को समझा जा सकता है।

◆धर्म द्वारा नियंत्रित अर्थ – यह समाज में आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने का प्रयास करता है।

**(iii) काम –** सामाजिक संबंधों की अभिव्यक्ति

◆काम को केवल यौन इच्छा नहीं, बल्कि भावनात्मक तृप्ति, कला, प्रेम, सौंदर्य आदि से भी जोड़ा जाता है।

◆यह वैवाहिक संस्था, पारिवारिक संबंधों और सामाजिक सौहार्द को बनाए रखने में सहायक है।

◆समाज में काम की नैतिक सीमाएँ धर्म द्वारा तय की जाती हैं।

**(iv) मोक्ष –** सामाजिक जीवन से मुक्ति नहीं, परिपक्वता की चरम अवस्था

◆मोक्ष समाज से पलायन नहीं, बल्कि जीवन के अंतिम उद्देश्य की प्राप्ति है।

◆यह व्यक्ति को अहंकार, भोगवाद, और भौतिकता से परे उठने की प्रेरणा देता है।

◆समाज में वृद्धों की भूमिका, सन्यास आश्रम की संस्था मोक्ष की समाजशास्त्रीय व्याख्या करते हैं।

**पुरुषार्थ और सामाजिक संस्था का संबंध**

- परिवार – धर्म और काम की शिक्षा का केंद्र
- शिक्षा – धर्म और अर्थ की दिशा में संस्कार देना
- आर्थिक व्यवस्था – अर्थ की मर्यादित पूर्ति
- धार्मिक संस्था– धर्म व मोक्ष की प्राप्ति का मार्गदर्शन
- विवाह संस्था – काम की सामाजिक स्वीकृति

**समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से पुरुषार्थ की भूमिका–**

**(1) सामाजिक संरचना में संतुलन–**

- पुरुषार्थ सिद्धांत समाज को संतुलित दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक संतुलन के लिए भी आवश्यक है।
- धर्म और अर्थ के बीच संतुलन से व्यक्ति धन अर्जित तो करता है, लेकिन नैतिक मार्ग से।
- काम और मोक्ष के बीच संतुलन से व्यक्ति भौतिक जीवन को भी महत्व देता है और आत्मिक विकास की ओर भी बढ़ता है।

**(2) मूल्यपरक जीवन –**

- समाजशास्त्र के अनुसार, किसी भी समाज की स्थिरता उसके मूल्यों पर निर्भर करती है। पुरुषार्थ सिद्धांत जीवन को नैतिकता, अनुशासन और सामाजिक जिम्मेदारी से जोड़ता है।

**(3) सामाजिक असमानताओं का समाधान –**

- धर्म और मोक्ष जैसे पुरुषार्थ समाज में आत्मिक समानता और करुणा को बढ़ावा देते हैं, जिससे वर्गीय, जातीय या आर्थिक भेदभाव की मानसिकता में कमी आती है।

**(4) परिवार और सामाजिक संस्थाओं में भूमिका –**

- परिवार, विवाह, शिक्षा, धर्म–स्थल आदि संस्थाएं पुरुषार्थ आधारित मूल्यों पर टिकी हुई हैं। इनमें धर्म, काम और अर्थ का सीधा हस्तक्षेप दिखाई देता हैं।

**आधुनिक युग में पुरुषार्थ की प्रासंगिकता**

- नैतिक–आचार संबंधी चुनौतियाँ – भ्रष्टाचार, वृहद भौतिकवाद आदि के बीच धर्म का स्थान।
- आर्थिक दबाव और अर्थ की सिद्धि – आज के आर्थिक मॉडल, नौकरी, जीवनशैली, उपभोगवादी प्रवृत्ति।
- कामना और मनोरंजन – सोशल मीडिया, मनोरंजन उद्योग, यौन संस्कृति आदि में काम की भूमिका।
- आध्यात्मिकता और मोक्ष की चाह – आधुनिक योग, ध्यान, आध्यात्मिक आंदोलनों में मोक्ष/स्व–अध्यात्म की रुचि।

**सुझाव –**

1. शिक्षा प्रणाली में जीवन–दर्शन आधारित पाठ्यक्रम जो पुरुषार्थ के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप से समझाए।
2. युवाओं को आत्म–मूल्यांकन और संतुलित जीवन जीने की प्रेरण

**निष्कर्ष –**

पुरुषार्थ की अवधारणा भारतीय जीवन–दर्शन का मूल है और सामाजिक ढांचे की रीढ़ भी। यह केवल दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि सामाजिक अनुशासन और व्यक्तिगत विकास का मार्ग है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो पुरुषार्थ समाज को संतुलन, मूल्य और दिशा प्रदान करता है।

आज के युग में इसकी व्याख्या और प्रचार–प्रसार आधुनिक सन्दर्भों में होना आवश्यक है, जिससे यह विचारधारा केवल धार्मिक पुस्तकों तक सीमित न रहकर जीवन की वास्तविक समस्याओं का समाधान बन सके।

पुरुषार्थ मानव जीवन की उद्देश्य–पूर्ति की एक समग्र पीठिका है जिसमें आत्मा, समाज, मन, और जीवन के विभिन्न आयाम सम्मिलित होते हैं। संतुलित जीवन, मानव मूल्य, और अंततः आत्म–साक्षात्कार के लिए ये पुरुषार्थ आज भी प्रासंगिक हैं। एक शोध में यह स्पष्ट करना होगा कि किस प्रकार व्यक्ति अथवा समाज पुरुषार्थों को संतुलित कर सकता है ताकि समग्र विकास हो सके। व्यक्तिगत, सामाजिक, आध्यात्मिक सभी स्तरों पर।

पुरुषार्थ भारतीय समाज की आत्मा है। यह केवल एक व्यक्तिगत साधना नहीं, बल्कि समाज की संरचना, दिशा और मूल्य–प्रणाली का दर्पण है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष व्यक्ति को न केवल जीवन जीने की राह दिखाते हैं, बल्कि समाज को नैतिक, आर्थिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक रूप से संतुलित भी बनाते हैं।

आज के युग में यदि समाज पुरुषार्थों के बीच संतुलन स्थापित करे, तो यह न केवल व्यक्तिगत शांति, बल्कि सामाजिक स्थायित्व और नैतिक पुनर्निर्माण की राह बन सकती है।

## सन्दर्भ ग्रंथ सूची


1. द्विवेदी, आर. एन. (2003). भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय का स्वरूप. नई दिल्ली– भारतीय विद्या परिषद्।
2. शुक्ल, वि. भू. (2001). भारतीय दर्शन का इतिहास. वाराणसीरू चौखम्बा विद्या भवन।
3. राधाकृष्णन, एस. (1999). भारतीय दर्शन (खंड 1–2). नई दिल्ली– ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. शर्मा, चन्द्रधर. (1996). भारतीय दर्शन– एक समालोचनात्मक अध्ययन. दिल्ली– मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन।
5. हीरानंद, एम. (1993). भारतीय दर्शन की मूलभूत बातें. दिल्ली– मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन। (अंग्रेज़ी मूल: M- Hiriyanna] Essentials of Indian Philosophy)
6. भगवद्गीता. (अनुवाद– स्वामी प्रभुपाद या अन्य). श्रीमद्भगवद्गीता – यथारूप. मुंबई– भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट।
7. मनुस्मृति. (2005). (अनुवाद– पैट्रिक ओलिवेल). मनुस्मृति– मानव धर्मशास्त्र का आलोचनात्मक संस्करण. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। (संस्कृत मूल ग्रंथ, आधुनिक अनुवाद– Patrick Olivelle)
8. काणे, पं. वामनशास्त्री. (1930–1962). धर्मशास्त्र का इतिहास (खंड 1–5). पुणे– भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट।
9. विवेकानंद, स्वामी. (2007). स्वामी विवेकानंद रचनावली (खंड 1–9). कोलकाता– अद्वैत आश्रम।
10. ओलिवेल, पैट्रिक (अनुवादक). (1998). धर्मसूत्र– आपस्तम्ब, गौतम, बौधायन एवं वशिष्ठ के विधिसूत्र. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।